P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-5* ISSUE-4* December- 2017
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

समाज में साहित्य की उपादेयता

अर्निका यादव
अंशकालिक प्रवक्ता,
हिन्दी विभाग,
अकबरपुर महाविद्यालय,
अकबरपुर, कानपुर देहात

सारांश

वर्तमान साहित्य का स्वरूप व्यापक एवं बहुआयामी है साहित्य की यह विशेषता होती है कि वह संवेदना प्रधान होने के कारण किसी भी प्रकार की सूक्ष्म से सूक्ष्म गतिविधि को ज्ञान के अन्य माध्यमों से पहले ग्रहण कर लेता है। अतः साहित्य की यह विविधता अनेक प्रकार की समस्यायें भी उत्पन्न करता है। भारतीय साहित्य के अध्ययन से उभरने वाले भारत के बिम्ब, भारतीयता के समाज और भारतीय मूल्यों का भी आंकलन किया जाता है अतः एक श्रेष्ठ रचना की नींव मानवीय एवं उच्च आदर्शों के आधार पर ही शुरू होती है।

मुख्य शब्द : समाज, साहित्य, ब्रह्माण्ड

प्रस्तावना

एक बेहतर समाज के निर्माण में समाज का उल्लेखनीय योगदान रहता है। एक छोटा सा लेख भी मनुष्य के मन मस्तिष्क पर खास असर छोडता है। वहीं जब कोई पाठक किसी रचना को पढ़ता है तो वह उसके किसी ना किसी पात्र में वह स्वयं को महसूस करने लगता है, उससे जुड़े बाकी पात्रों को भी अपने आस–पास ही पाता है। वह उन पात्रों से बहुत कुछ सीखता है, उनसे प्रेरणा लेता हुआ अपनी बुराइयों को पहचान उन्हें छोड़ने की ओर अग्रसर होता है पाठक उन पात्रों में खुद को ढूँढ़ने लगता है या भविष्य में वैसा ही बनने की कल्पना करने लगता है। प्रत्येक व्यक्ति साहित्य के माध्यम से अपनी अभिरुचि के अनुसार सामग्री प्राप्त करता है। साहित्यक रचना का समाज पर एक खास असर होता है। वह समाज को बदलती है, मगर उसका हथियार दूसरा होता है। वह गोली के द्वारा एक बर्बर दुनिया को बदल एक हिंसात्मक संसार का विकल्प नहीं प्रस्तुत करती बल्कि एक सार्थक भाषा के द्वारा एक सौन्दर्य प्रिय सुखद संसार का उदाहरण पेश करती है कुछ साहित्यकारों का मानना है कि साहित्यकार की अपनी एक सीमा होती है वह समस्त ब्रह्माण्ड को नहीं नाप सकते। वह किसी एक क्षेत्र एक समाज, जिसमें वह पला–बढ़ा है उसके बारे में जितनी गहराई जानता है उतना किसी अन्य क्षेत्र के बारे में लिखते समय उतनी गहराई तक नहीं उतर पायेगा, परन्तु एक सत्य यह भी है कि साहित्य का क्षेत्र का व्यापक होता है। किसी भी रचना के पाठक किसी भी क्षेत्र, जाति समुदाय से हो सकता है। इतना ही क्यों किसी भी देश का हो सकता है। इसलिए साहित्यकार को रचना सृजन करते समय यह ध्यान रखना होगा कि उसकी यह रचना कुछ विशेष लोगों के लिये ही नहीं है अपितु उसका प्रभाव समस्त समाज पर पड़ने वाला है "रचना का समाज पर असर होता है पर उससे कोई तत्कालिक परिवर्तन कभी–कभी ही हो पाता है। उसका असर निश्चय ही बड़ा गहरा होता है पर सीधे नहीं धीरे–धीरे होता है"[1]।

उपकल्पना

प्रस्तावित शोधपत्र में यह परिकल्पना की गयी है कि वर्तमान साहित्य में नवीनता एवं आधुनिकता भारतीय मूल्यों के साथ धारण करना तथा समाज में साहित्यिक उपादेयता से अवगत कराना है।

शोधप्रविधि

प्रस्तावित शोधपत्र की अध्ययन विधि प्रमुखतः विवेचनात्मक एवं व्याख्यात्मक है जिसमें विषय से सम्बद्ध–पुस्तकों एवं समाचार पत्रों को भी प्रयोग में लिया गया है।

साहित्यावलोकन

जिज्ञासा मानव की स्वभाविक प्रवत्ति है। इसका मुख्य कारण यह है कि अन्य प्राणियों की अपेक्षा मानव में चिन्तन शक्ति अधिक है। उसके ज्ञान की प्यास कभी नहीं बुझती। जितना ज्ञान बढ़ता जाता है, उसके ज्ञान की प्यास भी बढ़ती जाती है। साहित्य ही उसकी प्यास को बुझा सकता है, इस दृष्टि से समाज में साहित्य का महत्वपूर्ण स्थान है। किसी भी साहित्यकार का रचना निर्माण से पहले स्वयं को भली–भॉति समझने का प्रयास सर्वथा रहता है जितनी

अच्छी तरह हम खुद को समझ पायेगें तभी हम दूसरों को भी भली प्रकार समझा पायेंगें।

अध्ययन का उद्देश्य

जनता को शिक्षित एंव जागरुक करना तथा उनके स्तर को ऊँचा करने की समस्यायें प्रमुख हैं। वर्तमान में गंभीर साहित्य के पाठक एंव रचनाकार दोनों का औसत धीरे–धीरे घटता नजर आने लगा है। क्योंकि आज के समय में फैशन, यौनसम्बन्धों में स्वच्छन्दता, सौन्दर्य की उपासना करने वाले पाठकों की मात्रा बढने से साहित्यकारों की लेखन प्रवृत्ति में भी प्रचुर मात्रा में परिवर्तन देखने को मिलने लगा है। ऐसा साहित्य भले वर्तमान समय में पाठकों का मनोरंजन करने में तथा उनके भीतर तक प्रभाव छोड़ने में सफल हों परन्तु ऐसे साहित्य की समय सीमा सीमित ही रहती है वह प्रासंगिक नहीं हो सकता है। साहित्य के समाज के प्रति कुछ प्रमुख दायित्व होते हैं जिनके निर्वहन में साहित्यकारों की प्रमुख भूमिका रहती है। मुक्तिबोध ने भी अपने एक निबन्ध में कहा है कि "जनता के साहित्य का अर्थ जनता को तुरन्त ही समझ में आने वाले साहित्य से हरगिज नहीं। जनता के साहित्य का अर्थ है, ऐसा साहित्य जो जनता के जीवनमूल्यों को, जनता के जीवनादर्शों को प्रतिष्ठापित करता हो, उसे अपने मुक्तिपथ पर अग्रसर करता है"[2]।

साहित्यकार के रचना के पात्र उसके अन्दर से ही विकसित होते हैं, परन्तु इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि जो "मैं" हूँ वही साहित्य है साहित्य सृजन का दायित्व "हम" से परिपूर्ण होता है। रचनाकार अपने अनुभवों का परिष्कार करता है उन्हें शोधता है और अपने अतिरिक्त उन्हें दूसरों का भी बनाकर प्रस्तुत करता है। चूँकी साहित्यकार भी समाज से निकल कर बाहर आता है। अतः उसके पात्र भी समाज से निकलते हैं। यही पात्र समाज को न्यायप्रिय बनना सिखाते हैं तथा उनकी चेतनाशक्ति को जगाने में प्रेरक तत्व बनते हैं "हमारे आस–पास के संसार को अर्थ प्रदान करने में ही किसी कविता के अपने संसार की सार्थकता है"[3]।

अतः हम इस बात से इनकार नहीं कर सकते कि साहित्य और समाज एक दूसरे के आधार है। समाज के द्वारा साहित्य का और साहित्य के द्वारा एक नये सभ्य, जागरुक समाज का निर्माण होता है। भले ही पात्रों को समाज से ही चुना जाता है परन्तु साहित्यकार उन पात्रों को एक ऐसे साँचे में ढालकर उतारता है। जिससे आने वाले समाज में इन पात्रों के द्वारा मनुष्य के वास्तविक जीवन में यथावत परिवर्तन या सुधार किया जा सके। मनुस्मृति की रचना इसी उद्देश्य के साथ की गयी थी ऐसे प्रयास के साथ लेखन एक कलात्मक सृजन तो है ही साथ ही रचनाकार समाज को एक बेहतर स्वरूप देने के संकल्प से भी प्रतिबद्ध होता है। रचना लेखन में एक बात यह भी सत्य है कि रचना ना तो पूर्णतया सत्य होती है और ना ही पूर्णतया काल्पनिक। परन्तु कल्पना एवं ज्ञान के साथ समाज में साहित्य की उपादेयता को भी महत्व देना रचनाकार की रचनाधर्मिता है। "ज्ञान के क्षेत्र में ही भावना विचरण करती है इसलिये ज्ञान को अधिकाधिक मार्मिक, यथार्थमूलक और विकसित करने का जो संघर्ष है वह वस्तुतः कलाकार का संघर्ष है यदि कवि या कलाकार वह संघर्ष त्याग देता है तो वह सचमुच ईमानदार नहीं है"[4]।

अतः साहित्य में जीवन की अभिव्यक्ति किसी ना किसी रूप में अवश्य रहती है वह नितान्त निरपेक्ष नहीं हो सकता। इतना अवश्य है कि उसका कुछ अंश यथार्थ तो कुछ काल्पनिक होता है जिसमें अधिकांश भारतीय चिन्तक एवं कवि साहित्य के उपयोगितावादी दृष्टिकोण का समर्थन करते है।

" मानते है जो कला, बस कला के अर्थ ही।
स्वार्थिनी करते कला को व्यर्थ ही।। "

वर्तमान समय में बढ़ते परिवारिक विघटन, तलाक, फैशन के इस दौर माताओं की बदलती छवि माँ–बाप के प्यार को तरसते बच्चे, नेताओं के घृणित स्वरूप एवं अपने कर्तव्यों से विमुख होती जनता इन सभी के उचित मार्ग–दर्शन के हेतु रचनाकारों की सोच सकारात्मक दिशा में होनी चाहिये उच्चकोटि की नैतिकता को प्रतिस्थापित करना तथा प्रत्येक वर्ग को सही दिशा की ओर अग्रसर करने में ही साहित्य की महत्व है। स्वतन्त्र होने की कल्पना करने पर अपने आस–पास के लोगों की उपेक्षा करते हुये हम अकेले चलना ही क्यों पसंद करने लगे हैं क्या रिश्तों संस्कारों एवं सभ्यता को हेय दृष्टि से देखना ही आधुनिकता है आधुनिकता की इस दौड़ में चित्रामुद्गल जी के उपन्यास "एक जमीन अपनी" की नायिका अंकिता, स्त्रियों का सही मार्गदर्शन करते दिखाई पड़ती है प्रेमचन्द्र ने भी गोदान में मेहता के माध्यम से मालती जैसी महिलाओं का उचित मार्गदर्शन किया है। आज के समय स्त्रियां एकांगी जीवन पर विश्वास करने लगी है अगर एक ओर पुरुषों ने स्त्रियों का शोषण किया है तो दूसरी ओर नारी शिक्षा और स्वतन्त्रता के लिये पहली आवाज महात्मा फूले, राजा राममोहन राय जैसे महापुरुषों की ओर से ही उठी थी। चित्रा मुद्दगल जी कहती हैं कि "इस समाज को पितृसत्ता की रूढ़ियों से मुक्ति चाहिये, पुरुषों से नहीं "[5]।

क्रान्ति किसी भी क्षेत्र में हो सीमा एवं मर्यादा में रहकर करना ही उचित होता है आज की युवा पीढ़ी जिस प्रकार की क्रान्ति करने के नाम पर आगजनी करना, तोड़–फोड़ करना पत्थर बाजी जैसी क्रान्ति अतिवादिता तक पहुँच जाते हैं। इस प्रकार की अतिवादिता से किसी भी क्षेत्र में अगर एक ओर समस्यायें समाप्त होती हैं तो वहीं दूसरी ओर कई समस्याओं का अवतरण होने लगती हैं जैसे नारी स्वतन्त्रता के नाम पर स्वयं स्त्रियॉं स्वतन्त्रता को देह की आजादी का पर्याय मानना ज्यादा पसंद करने लगी हैं। नारी देह का खुला प्रदर्शन, अश्लीलता परोसने वाले विचार, नारी का वास्तविक सम्मान करने वाले किसी भी सभ्य समाज को स्वीकार्य नहीं होगा। नारी जब घर से बाहर निकलती है तो अपनी स्वयं की पहचान के साथ स्वाभिमान से जीने के लिये ना कि अपनी सभ्यता, संस्कृति एवं संस्कारों को छोड़ने के लिये।

"साहित्य समाज का दर्पण होता है।" साहित्य में किसी प्रवृत्ति का उदय तत्कालीन परिस्थितियों के कारण होता है परिस्थितयाँ जनता की चित्रवृत्ति को बदलती रहती हैं। शायद इसलिये वर्तमान में सबसे ज्यादा जोक पति–पत्नी के रिश्ते में, पीड़ित पति के नाम पर बनने लगे

हैं। कहीं ऐसा ना हो कि एक समय वो आये जब घर में पीड़ित पत्नी नहीं पति के लिये भी साहित्य सृजन करना पड़ा। स्वतन्त्र भावना के साथ रिश्ते के प्रति वफादारी, कर्तव्यनिष्ठा एवं मर्यादा को साथ लेकर चलने पर ही हम सही दिशा की ओर अग्रसर होंगे। परम्परा और नवीनता को उनके सही अर्थों में समझना आवश्यक है "परम्परा का अर्थ "रूढ़ि" नहीं है और ना नवीनता का अर्थ "चमत्कार" है। नया लेखक "परम्परा" को "रूढ़ि" मान लेता है अतः वह "परम्परा" शब्द से ही चिढ जाता है। पुराना लेखक "नये" को द्रोही और ऊल–जलूल मानकर "नये" शब्द से ही चौंक उठता है। ये दोनो ही धारणायें पूर्वाग्रह युक्त हैं। "रूढ़ि" की कोई तार्किक संगति नहीं होती ना वर्तमान में उसका कोई अर्थ होता है। किन्तु "परम्परा "एक विकासशील प्रक्रिया है, जिसकी सार्थक व्याख्या की जा सकती है "[6]।

भारतीय समाज और पाष्चात्य समाज में पर्याप्त अन्तर है। अगर हम भारतीय समाज में व्याप्त कुरीतियों को मिटाने हेतु पाष्चात्य विचारधारा को अपनाते हैं तो हम घने जंगल में भटकने वाले व्यक्ति के समान किसी सार्थक दिशा की ओर उन्मुख होने में विफल ही रहेंगे। "पश्चिम में जो चीजें अच्छी हैं, वह उनसे लीजिये। संस्कृति में सदैव आदान–प्रदान होता आया है, अच्छी नकल मानसिक दुर्बलता का ही लक्षण है । "[7]

सभ्यता में समावेश हुई बुराइयों, कुरीतियों को दूर करने का प्रयत्न होना चाहिये, ना कि भारतीय सभ्यता में। भारतीय समाज की सभ्यता विश्व की सर्वश्रेष्ठ सभ्यताओं में से एक है जो भारतीयों का अस्तित्व था, है और रहेगा। अपने अस्तित्व को मिटाकर, भूलकर हम नयी जीवन शैली तो अपना सकते हैं हो सकता है क्षणिक सुख भी प्राप्त कर पायें परन्तु हमारे समाज के नैतिक मूल्यों का क्षरण होगा भारतीय संस्कृति की आत्मा सिसकने लगेगी तथा मानवीय मूल्य समाप्त हो जायेगें। नवीनता को धारण करना गलत नहीं है परन्तु अपनी अस्मिता को खोकर उसे धारण करना उचित नहीं। "आज के अधिकांश साहित्य को देखने पर यह प्रतीत होता है कि एक ओर विद्रोह, असंतोष, उत्तेजना, शोषण का है तो दूसरी ओर परपुरुषों के साथ स्वच्छन्द सम्बन्धों का चित्रण बहुलता से हुआ है। किन्तु ये दोनो चमत्कार अनुकरण और वह शीपन में अधिकांश नया साहित्य दिशा विहीन हो गया है। संदेह नहीं कि आज के जीवन में उत्तेजना, क्षोभ एवं असंतोश व्याप्त है परन्तु इन सबको जीवन मूल्यों में स्वीकार नहीं किया जा सकता।

वर्तमान साहित्य का अधिकांश विद्रोह ऐसा है जो किसी ना किसी व्यक्तिगत या सीमित क्षेत्र की सुविधा के लिये किया गया है उनके पीछे एक सम्पूर्ण समाज के मांग की प्रेरणा नहीं है। वर्तमान में साहित्य का सृजन सबके लिये नहीं सिर्फ अपने लिये जीने की भावना से प्रेरित होने लगा है कि निजी स्वार्थों की पूर्ति हेतु कोई भी हथकण्डा अपना लिया जाता है। ऐसा विद्रोह व्यक्ति एवं समाज को असंतोश की ओर ही ले जायेगा जिसके अन्तिम छोर पर पहुँचने बाद भी हम उसी असंतोष से खुद को घिरा हुआ पायेगें जिससे निवृत्ति हेतु वर्तमान में भी विद्रोह कर रहे हैं क्योंकि "साहित्य समाज की सबसे अधिक वैयक्तिक और व्यक्ति की सबसे अधिक सामाजिक किया है "[8]।

साहित्य केवल सौन्दर्य का ही विधान नहीं करता अपितु वह "सत्यम् शिवम् सुन्दरम्" से अभिभूत होकर लोकमंगल का भी विधान करता है। रामचरित मानस में भले ही रामकथा हो किन्तु कवि का मूल उद्देश्य रामचरित्र के माध्यम से नैतिकता एवं सदाचार की शिक्षा देना ही रहा है जिस समय तुलसी का प्रादुर्भाव हुआ उस समय समाज अनेक विसंगतियों से घिरा था तुलसी चाहते थे कि लोग उनके इस ग्रन्थ को पढ़कर सदाचारी बनें उसके हृदय का कलुश नष्ट हों, उनमें विश्वबन्धुत्व, सदभाव, सहयोग, प्रेम की भावना विकसित हो। मानव को कैसा आचरण करना चाहिये इसका आदर्श रामचरित्र मानस के विभिन्न पात्र है। आदर्श माता–पिता, आदर्श भाई, आदर्श पत्नी, आदर्श मित्र, आदर्श राजा, आदर्श प्रजा का स्वरूप रामचरित मानस में प्रस्तुत किया है। यह रचना तत्कालिक पीड़ाओं से गस्त समाज को एक ऐसे दीपक के रूप में मिली जिसने जीवन के अन्धेरे पथ को रौशन कर दिया। "साहित्य यदि अपने समकालीन समाज की आत्मा नहीं है, समाज को उसके सुख–दुख नहीं पहुँचाता, नैतिक और सामाजिक संकटों के विरुद्ध चेतावनी नहीं देता तो वह साहित्य नाम का अधिकारी नहीं है, वह एक आभार भर है "[9]।

रचनाकार के लिए रचनात्मक प्रतिभा एवं संवेदनशीलता प्रथम आवश्यकतायें हैं। इनके बिना कोई भी लिखने वाला रचनाकार हो ही नहीं सकता।

निष्कर्ष

साहित्य हमारा प्रेरक तत्व है हमारा मार्गदर्शन करता है और संस्कृति हमारी पहचान है। साहित्य हमारी संस्कृति की जलती हुई मशाल है और हमारे राष्ट्रीय गौरव एवं गर्व की वस्तु। साहित्य आचरण को गढ़ता है, समाज को को संस्कारित करता है मनोविकारों पर अंकुश लगाता है, उसके भीतर छिपे देवता को जगाता है, पाशविकता का शमन करता है, सन्मार्ग की ओर प्रेरित करता है तथा सीधे दिल पर प्रहार करता है किसी भी देश या समाज की पहचान उसके साहित्य से होती है। भारत की वास्तविक पहचान वे कालजयी रचनाकार है जिनकी रचनायें हमारा सबल हैं। कबीर, तुलसी, रवीन्द्रनाथ टैगोर, शरतचन्द्र, दिनकर, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, महावीर प्रसाद द्विवेदी, हजारी प्रसाद द्विवेदी, प्रेमचन्द्र, मैथलीशरण गुप्त आदि साहित्यकारों से ही भारत की आत्मा को पहचाना जाता है।

एक श्रेष्ठ रचना की नींव मानवीय एवं उच्च आदर्शों के आधार पर शुरू होती है क्योंकि आदर्श विरोधी तर्क कभी प्रासंगिक नहीं हो सकते।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *विश्वनाथ प्रसाद तिवारी–रचना के सरोकार, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1996,* ISBN:.81.7055.105.6 *ए पृं0 सं0– 24,25।*
2. *मुक्तिबोध, "नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र", 2008, पृं0 सं0– 78,79।*

3. *नामवर सिंह – कविता के नये प्रतिमान,1968, पृं0 सं0– 23 ।*
4. *मुक्तिबोध, एक साहित्यिक डायरी, 2000 ISBN:- 81. 203.0061.2 , पृं0 सं0– 64 ।*
5. *अमर उजाला – कानपुर, रविवार, 19 नवम्बर 2017, पृं0 सं0– 11 ।*
6. *विश्वनाथ प्रसाद तिवारी – रचना के सरोकार, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृं0 सं0– 74 ।*
7. *प्रेमचन्द्र, गोदान, 2009, पृं0 सं0–150 ।*
8. *नेमिचन्द्र जैन– बदलते परिपेक्ष्य,1967, पृं0 सं0– 51 ।*
9. *नवल किशोर : मानववाद और साहित्य, पृं0 सं0– 167 ।*